P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-9*(Part-2) December- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

संतमत का भारतीय समाज पर प्रभावः साहिब पंथ हाथरस के विशेष सन्दर्भ में

तरूण कुमार सिंह
शोधार्थी,
इतिहास विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय,
अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रतिभा शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर एवं प्रभारी,
इतिहास विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय,
अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

भारतीय समाज में परिवार का महत्व अवर्णनीय है। इसे जीवन की प्रथम पाठशाला कहा जाता है। भारतीय समाज में संतों की मूल चेतना ने सामाजिक सुधार तथा अन्धविश्वासों आडम्बरों का मुखर विरोध अपनी–अपनी वाणियों के माध्यम से किया। संतों ने ग्रन्थो का अध्ययन नहीं किया फिर भी वे सहज व सरल शब्दों भाषाओं के माध्यम से जन जन तक पहुँचने का कार्य किया। संतो ने साम्प्रदायिक सौहार्द्र तथा समन्वयवादिता और आध्यात्मिक विचारों से समाज में एकता का सन्देश दिया। उन्होनें प्रेम का मार्ग सभी जाति सम्प्रदायों को खोल दिया। उत्तर भारत में 14 वी शताब्दी से लेकर 18 वी शताब्दी तक अपनी अटपटी वाणियों विचारों से सम्पूर्ण जनमानस में चेतना को जाग्रह किया। संत परम्परा का सूत्रपात कबीर ने किया और आगे आने वाले संत, नानक दादू, मलूकदास, तुलसी दास, पलटू दास तुलसी सहिब आदि इनको इनके अनुयायी सहिब जी कहते हैं। इनकी अवसान के वाद इनके ही अनुयायियों ने हाथरस में किले के समीप आश्रम में ही सहिब पंथ का निर्माण किया। और यह परम्परा वर्तमान में भी जारी है। इन्होनें सर्वजन सुलभ संतमत विकसित किया जिसने आगे चलकर परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया।

मुख्य शब्द : मानवता, संतमत कुरीतियों आत्मा चिंतन, धर्मिक, दर्शन, अध्यात्मिक, संस्कृति।

प्रस्तावना

भारतीय समाज में परिवार का महत्व अवर्णनीय है। इसे जीवन की प्रथम पाठशाला के रूप में भी जाना जाता है। व्यक्तियों से समाज विनिर्मित है। अतएव भारतीय समाज में संतों की मूल चेतना ने समाजिक सुधार एवं साम्प्रदायिक सौहार्द्र को बढ़ाया है। संतो का जीवन अध्यात्म पर आधारित है। अध्यात्मिक जीवन को सफल बनाने के लिए संत लोक जीवन को आवश्यक समझते हैं। एवं प्रत्येक परिस्थिति में अनुभूति–मूल चिन्तन समाज के समक्ष उपस्थित करते हैं। सभी संतो की शिक्षा अपने मूल रूप में एक ही रही है। वे परमात्मा की प्राप्ति के सशक्त अवयव हैं। प्रविधि के परामर्श दाता हैं। सभी संत अन्ततः एक ही बात करते हैं। समय व स्थान विभेद के कारण भाषा आदि मे बदलाव सम्भव है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि भौतिक जीवन में रहने के नाते संतो के अनुयायी उनके इस लोक से परलोक सिधारने के बाद गुरू–मुख कम मन–मुख ज्यादा हो जाते हैं। इस प्रकार वे असली शिक्षा का परित्याग कर वार्हिमुखी क्रिया कलापों में उलझ जाते हैं। संतो के निर्मल कहानी सन्देश को वे वाहरी परिपाटी व कर्मकाण्ड का रूप दे देते हैं।

अध्ययन के उदेश्य

1. संतमत का भारतीय समाज पर प्रभाव का अध्ययन करना।
2. निर्गुण सम्प्रदाय के संतो की मूलभूत शिक्षाओ तथा धर्म आध्यात्म के दर्शन को प्रस्तुत करना।
3. तुलसी साहिब (हाथरस वाले) द्वारा साहिब पंथ का तत्कालीन समाज पर प्रभाव का वर्णन करना।
4. संतमत के व्यावहारिक बैज्ञानिक तथा सहज शिक्षाओं के समाज पर प्रभाव का विवेचन करना।
5. तुलसी साहिब ने किस प्रकार के निर्गुण दर्शन को प्रस्तुत किया, का विश्लेषण करना।

विषय विस्तार

जस–जस संत कहा घट लेखा।
तस तस तुलसी नैनन देखा।
(घटरामायण–भाग 1 पृ0 38)

तुलसी साहिब ने ग्रन्थो का अध्ययन नहीं किया है। या उनके द्वारा जो कुछ भी रचा गया है। वह व्यापक मानवता को दृष्टि में रखकर किया गया है। फिर भी वे सामाजिक जीवन में प्रयुक्त उपमानो को सहज शब्दों द्वारा सरल भाषा के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाने का कार्य किया। व्यापक मानवता एवं आदर्श को निरूपित करते हुए इन्होनें धर्म को संधानित किया। वास्तव में समाज में धर्म के साथ उनके आडम्बर जुड़ गये हैं। जो मानव और मानवता को पथ भ्रष्ट कर रहे हैं। इसी से बचने हेतु संतों ने बिगुल बजाया और उनको इस कार्य में सफलता प्राप्त हुई।

तुलसी संत दयाल निज निहाल मो कौ कियौ।
लियौ सरन के माहिं जाइ जन्म फिर कर जियौ।।
(घट रामायण पृ0 13)

हिन्दू जाति ने जब इस सत्य का अनुभव किया कि दूसरे लोगों ने ईश्वर प्राप्ति को अपना लक्ष्य वनाकर विभिन्न रास्तो से उसकी प्राप्ति की है। तो उन सभी ने उनके सिद्धान्तों का उदारतापूर्वक अपना लिया और काल क्रम में उनका स्थान ठीक तरह से निर्धारित कर दिया। इस जाति ने विभिन्न समुदायों के विशेष आयामों का उनकी ही उन्नति के लिए उपयोग किया क्योंकि उनकी रूचि और प्रतिभा के विकास के लिए उनके जीवन और विचारों को सम्रद्ध बनाने के लिए उनके भाववेगों का जाग्रत करने के लिए उनके कार्यो को प्रेरणा देने के लिए वे ही एक मात्र साधन थे। अतः हिन्दू धर्म कोई निश्चित धर्म मत नहीं हैं बल्कि– आध्यात्मिक विचारों और साधनाओं का विशाल और विविध तत्व पर समानिवत सूक्ष्मता से एकीकृत पुँज है। इस धर्म में मानव आत्मा को ईश्वर में लीन करने की परम्परा युगों से निरन्तर बढ़ती रही है। परम्परा कुछ ऐसी वस्तु है जो सदा अपने अनुयायियों के स्वतंत्र प्रयत्नों द्वारा नये सिरे से सुधारे जाने तथा पुर्ननिर्मित होते रहने की वस्तु है। अगर परम्परा का विकास नहीं होता है तो इसका अर्थ है कि उनके अनुयायियों की आध्यात्मिक मृत्यु हो चुकी है। हिन्दू धर्म के सम्पूर्ण जीवन में उनके विचारशील कर्मण्य नेता नयी स्थिति के योग्य नये रूपों के अनुसंधान में और नये आदर्शों के विकास में निरन्तर लगे रहते हैं।[1]

धरा धाम पर संतो का अवतरण समाज में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त करने के लिए ही होता है। इसलिए संत सहित्य का भारतीय समाज पर अमिट प्रभाव है। और वर्तमान में रहेगा। भारतीय जन जीवन में संचरण करने वाली आध्यात्मिक वृत्ति की धारा का उत्स जीवनारम्भ से ही रहा होगा। युग युगान्त को पार करती हुई यह धारा आबाध गति से अद्यतन प्रवधमान है। स्वंय संत तुलसी साहिव ने कहा है कि :–

सतगुरू पारस सार, लगै लार पारस करै।
सरै जीव कौ काज, अरै सुरति मिनि भवन में।।
(घटरामायण पृ0 41)

संतो का समग्र साहित्य आध्यात्मिक साधना का अप्रतिम उदाहरण है। जिसमें जीवनानुभवों के माध्यम से समाज को नव पथ गामी बनाने का प्रयास सन्निहित है। जा ईश्वरोंन्मुख है। इसका सीधा सम्बन्ध आत्मानुभूति से रहा है। जो ईश्वरोन्मुख है। इसका सीधा सम्बन्ध आत्मानुभूति से रहा है। सामाजिक उदेश्य को सामने रखकर संतो ने समाज में व्याप्त गतिविधिताप से संतत्प जनता को शान्ति प्रदान करने के लिए भक्ति साहित्य की रचना का अप्रतिम परोपकार किया है। यही कारण है कि इस साहित्य को लोगव्यापी काव्य के रूप में मान्यता मिली है। धर्म में परिव्याप्त आडम्बरों का विरोध कर आध्यात्मिक तथ्यो द्वारा उसे प्रतिष्ठित करने के साथ ही साथ संतो ने लोक–पक्ष पर अधिक वल दिया। लोक चिन्तन का समग्र एवं स्वतंत्र विकास मध्य युग में हुआ। आध्यात्मिक चिन्तन भारतीय भू–भाग की जातीय विशेषता है।

संतो का मार्ग प्रेम का मार्ग है। परमात्मा प्रेम–स्वरूप है। वह प्रेम का पुँज या स्त्रोत हैं समस्त रचना प्रेम से ही उद्भुत है। सम्पूर्ण जीवात्माएँ भी प्रेम भूला है। इसलिए आत्मा को प्रेम के माध्यम से ही परमात्मा की ओर ले जाया जा सकता है। व्यक्ति के अन्तः करण में भाव आते ही आत्मा का स्वतः खिचाव अपने मूल की ओर होने लगता है। प्रेम रूप आत्मा प्रेम की सीढ़ी पर सवार होकर ऊपर की ओर उलट कर चढ़ती है। और अपने मूल स्त्रोत में समाकर निर्बन्धन हो जाती है। सभी संतों के मत के मूल में यह विशेषता या महत्ता विद्यमान है। लेकिन परमात्मा अरूप है। अनाम है। वह कभी भी न तो हमारे बीच आया है। न ही आता है। न आयेगा। जिसे कभी भी देखा नही उसके प्रति आकर्षित होना सम्भव नहीं हैं इसलिए मनुष्य का लगाव सीधा परमात्मा से नहीं होता और मध्यस्थ के रूप में गुरू की आवश्यकता होती है।

समाज की स्थिति समयानुरूप परिवर्तित होती रहती है। इसमें रूढ़ियों, आड़म्बर, और विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन बुराइयाँ से बचने के लिऐ संतो का साहित्य भरा पड़ा है। स्वंय संत तुलसी साहिब ने कहा :–

जोगी जोग ध्यान रस भूला ।
स्वाँसा संघ कीन्ह अनुकूला ।
मुद्रा पाँच वूरी मत झूला ।
पुनि ज्ञान जोग मत फूला।।
इन्द्र वस रस कीन्हों धूला।
वोऊ न पायौ सार रस मूला।
(तुलसी सहिब शब्दावली भाग 1 पृ0 9)

स्पष्ट है। कि संतो ने अपनी वाणियों के माध्यम से इसका कठोर विरोध किया।

अत्यत प्राचीन काल से मनुष्य पारस्परिक सौहार्द, मिल जुलकर रहना पारस्परिक सौजन्य, सुख दुख की सहानुभूति साहचर्य प्राप्ति, पारस्परिक सहानुभूति का परिपालन आदि कार्य करता चला आ रहा है। इस व्यक्तिगत एवं सामाजिक साघन्य सहयोगी तत्वो को जिनके द्वारा मानवीय जीवन गतिशील होता है। तथा पूर्णता प्राप्त करता है। समाज की संज्ञा दी जाती है। समाज बहुत व्यापक शब्द है। मानवजवीन से सम्बन्धित सभी प्रकार की संस्थाओ का केन्द्रित रूप समाज की श्रेणी में रखा जाता है। जिसमें सम्पूर्ण मानव प्राणी एक साथ ही गति से रहे या चले वही समाज है। समाज एक स्थायी एवं शाश्वत् संस्था है। उसी का नाम मानव समाज है।

संतों का दर्शन सामाजिक दर्शन रहा हे। संत या भक्त तद्युगीन सामाजिक विसंगतियो से लोगों को मुक्त कराने हेतु कार्य किया है। न कि चमत्कार हेतु। संतो के आचरण एवं उनकी वाणियों में समाज के अवलोकन की छटपटाहट है।

उत्तर भारत में 14 वीं से 18 वी शताब्दी में फैली भक्ति की उद्गम लहर समाज के वर्ण जाति, कुल एवं धर्म की परिसीमाओं का अतिक्रमण कर सम्पूर्ण जन मानस की चेतना में परिव्याप्त हो गयी जिसने एक जन आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया था। भक्ति आन्दोलन में साधक व भक्त मात्र मोक्ष प्राप्ति अथवा आत्म साक्षात्कार के लिए परमात्मा के सगुण या निर्गुण रूप की भक्ति ही नहीं की गई वरन् भक्ति के माध्यम से तद्युगीन सामाजिक जीवन में स्थित एक वर्ण या जाति का दूसरे वर्ण या जाति के प्रति अत्याचार अन्याय और शोषण के खिलाफ असहमति और विरोध की आशाओं, आकाक्षाओं और आदर्शों की भी अभिव्यक्ति हुई है। अतः भक्ति को सच्चे अर्थों में सामयिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन मूल्यों तथा स्वेच्छाचारी अवधारणाओं की दृन्दात्मक अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

संत परम्परा का सूत्रपात यहाँ उस काल में हुआ जबकि देश के इतिहास का प्राचीन युग समाप्त तथा मध्य युग आरम्भ हो गया था। भारतीयों की अनेकानेक भावनाओं पर शताब्दियों से समय समय पर आती रहने वाली विविध जातियों ने अपना न्यूनाधिक प्रभाव छोड़ रखा था। इस देश की संस्कृति में भी उसमें अनेक परिवर्तन ला दिये थे। इस्लाम धर्म का प्रचार होना सांस्कृतिक संघर्ष को और भी बढ़ा दिया था। विदेशी जब भारत में आते थे तो वे अपनी किसी न किसी विशेषता की छाप मात्र डाल पाते थे। और अन्ततः वे जन–मानव में लगभग घुल मिल जाया करते थे। लेकिन इस्लाम धर्म इससे भिन्न था। इनका समाज सुसंगठित ही नहीं वरन् ये लोग दृढ़ साम्प्रदायिक भावनाओं द्वारा अनुप्रमाणित थे। उनकी एकेश्वरवादी, भावना सामाजिक भेदभाव की विहीनता तथा धार्मिक सम्पन्नता की विशेषताओ में यहाँ तक की तथा कथित दलित परिगणित एवं पिछड़ी हुई जातियों में एक नवीन आशा को जाग्रत किया। इनके परिणाम स्वरूप उच्च वर्गीय लोगों को अपने नियत्रण के नियम ढीले करने पड़े। परिणाम स्वरूप समाज की सामूहिक मनोवृत्ति का झुकाव लोकोन्मुख होता चला गया। तदन्तर भक्ति साधना का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, संतों ने प्रायः सभी आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया। अपनी अटपटी राणियो द्वारा उन्होनें सर्व साधारण की चेतना को जाग्रत किया। संतों का दार्शनिक दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। निर्गुण भक्ति से सम्बद्ध संतों ने स्वतंत्र मार्ग अपनाया और ऐसा धार्मिक वातावरण बनाने का प्रयास किया जो विभिन्न जातियों ओर धर्मों के लोगों के लिए भी स्वीकार हो , इस मत ने वेदों की शक्ति को अस्वीकार किया और पुरानी सभी परम्पराओं से सम्बन्ध तोड़ा। सामाजिक भेदभाव के विरूद्व संघर्ष किया और हिन्दू मुस्लिम समन्वय का प्रयास किया निर्गुण सम्प्रदाय के संतों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों अन्धविश्वासों, मान्यताओं का मुखर विरोध किया। इस लम्बी परम्परा में कबीर, नानक, दादू मलूकदास, तुलसी साहिब तथा कुछ अन्य संतों के शिष्यों ने परम्पराओं को पंथ के रूप में भविष्य में जारी रखा।

संतगुरू और पंथ न जाना ।
यही संत पंथ हित माना।।

(घटरामायण पृष्ठ सं0 34)

तुलसी साहिब जिनको अनेक अनुयायी साहिब जी कहते थे। जाति के व्राह्म्ण थे। बाल्यावस्था में ही ऐसा तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ और घर वार छोड़कर अलीगढ़ जिले के हाथरस में आकर किले के पास गुफा में अपना प्रवास बनाया और ध्यान केन्द्रित किया। धीरे–धीरे सभी जाति धर्म, सम्प्रदाय के लोगों का जमावड़ा लग जाता क्योकि लोगों को उनके विचारों से सुख और शान्ति की अनुभूति होती थी। साहिब जी के उपदेशों तथा प्रवचनों में ज्यादातर निम्न वर्ग के लोगों का ही प्रवास था। साहिब जी सभी को समान भाव से सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करते थे। मुंशी देवी प्रसाद जो इस मत के आचार्य कहे जाते हैं। ने अपनी कृति तुलसी साहिब का जीवन चरित में लिखा है। कि उनके जीवन काल में किसी मत या पंथ का उदय नहीं हुआ और जीवन पर्यन्त इस बात पर बल दिया कि उनके देहान्त के वाद किसी प्रकार की कोई पंथ परम्परा का निर्वहन न किया जाये लेकिन शिष्यों ने इस गौरवशाली पंथ परम्परा को जारी रखा, जहाँ (हाथरस में किले के पास) तुलसी साहिब की समाधि बनी हुई है। वहाँ साहिब पंथ का निर्माण हुआ, न केवल हाथरस में बल्कि उत्तर भारत में कानपुर, लखनऊ, रायबरेली, मुरादाबाद आदि जगहों पर भी पंथ के आश्रमों में निरन्तर सत्संग और आध्यात्मिक चिंतन द्वारा लोगों को सन्मार्ग पर लाने का प्रयास निरन्तर जारी है। इस प्रकार तुलसी साहिब ने जाति सम्प्रदाय से अलग एक सवर्जन सुलभ संतमत विकसित किया। जिसने आगे चलकर परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चतुर्वेदी परशुराम – उत्तरी भारत की संत परम्परा भारती भण्डार प्रैस इलाहावाद वर्ष 1972

बड़थवाल दत्त पीताम्बर :– हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय अवध पब्लिसिंग हाउस लखनऊ वर्ष 1976

कुमारी विनीता – हिन्दी संत साहित्य के स्रोत संजय प्रकाशन दिल्ली – 2004

डा0 नगेन्द्र, डा0 हरदयाल – हिंदी साहित्य का इतिहास मयूर पेपर बैक्स ज्ञान खंड़ – 3 इन्दिरा पुरम लखनऊ – 1973

द्विवेदी हजारी प्रसाद – संत साहित्य में समाज और धर्म प्रयाग प्रकाशन प्रयाग – 1988

चतुर्वेदी सायदेव – हिन्दी काव्य की भक्ति कालीन प्रवृत्तियाँ संत काव्य संग्रह किताब महल इलाहाबाद–1961

सिंह नेपाल – उत्तर प्रदेश की संत परम्परा में संतों का योगदान, अरविन्द प्रकाशन अलीगढ़ – 1986

दामोदरन के0 – भारतीय चिन्तन परम्परा पब्लिसिंग हाउस प्रकाशन 1980 नई दिल्ली

चतुर्वेदी परशुराम – संत साहित्य की परख भारती भण्ड़ार प्रैस इलाहाबाद – 1980

श्री वास्तव दयानंद – हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रथम खण्ड आदिकाल और भक्तिकाल अमिताभ प्रकाशन कलकत्ता – 1965

मिश्र वन्धु– हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कविता कविता–गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ – 1976 – 77

ईराकी शाहबुद्दीन – मध्य कालीन भारत में भक्ति आन्दोलन, भारती प्रकाशन वाराणसी 1973

माहेश्वरी संतदास – परम संत तुलसी साहिब, राधा स्वामी सत्संग व्यास दयालवाग, आगरा – 2009

तुलसी साहिब – घटरामायण शब्दावली, सुरत विलास, वैलवेडियर प्रैस इलाहाबाद, 2007–09

तुलसी साहिब जीवन और सन्देशः– राधास्वामी सत्संग व्यास दयाल बाग, आगरा – 2009

शुक्ल आचार्य रामचन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रभात प्रकाशन वनारस 1976

तिवारी भोलानाथ – कबीर और उनका काव्य–राज कमल प्रकाशन, दिल्ली 1962 ई0

मिश्र राय दहिन – काव्य दर्पण, ग्रन्थ माला कार्यालय, पटना 4

उपाध्याय नागेन्द्र – नाथ और संत साहित्य काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वनारस

नाहटा अगर चन्द्र :– प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान, वीकानेर राजस्थान

मिश्र उमेश :– भारतीय दर्शन – सूचना विभाग उ0प्र0 सरकार, लखनऊ 1957 प्रथम सस्करण

सतेन्द्र :–मध्य युगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, साहित्य भवन प्रा0 लि0 इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

ब्रह्माचारी धर्मेन्द्र :– संतमत का सरभग सम्प्रदाय, बिहार राष्ट्र भाषा, परिषद पटना 1959 ई0

त्रिगुणायत गोविन्द – हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी 1 प्रथम संस्करण

पत्र / पत्रिकाएँ /जनरल

अमर उजाला – 2007 फरवरी पृष्ठ – 12 इतिहास के झरोखे से तुलसी साहिव का परिचय – कृष्ण विहारी शर्मा हाथरस

कल्याण पत्रिका – (संत अंक, भक्त परितांक, योगांक, वेदान्तांक साधनांक)गीता प्रेस, गोरखपुर 1962

संत वाणी – मंगल , प्रेस जयपुर वर्ष 3 अंक 2, सन् 1950 ई0

साहित्य सन्देश – साहित्य रत्न भंड़ार , आगरा

अंग्रेजी के सहायक ग्रन्थ

केलाग एस0 एच0 – ए ग्रामर आफ दि हिन्दी लैग्वेज

सिंह मोहन– कबीर एण्ड़ भक्ति मूवमेंट

फर्कुहर – एन आउट लाइन आफ दि रिलीजस, लिटरेचर ऑफ इण्ड़िया

मुखर्जी राधा मुखर्जी – इन्ट्रोडक्शन टु थ्योरी एण्ड़ आर्ट आफ मिस्टीसिज्म